Damodarshree -2019

Challenge of Human Suffering

The suffering of an oyster changes a grain of sand into pearl. Can suffering deepen, expand, hone, transforms the human mind from a narrow, shrivelled, self-centred entity to a caring, deeply concerned, all embracing, universal consciousness?

How does one respond to the suffering one's body and mind undergoes? But, besides one's own suffering, isn't there also the presence of suffering all around - the suffering of other people, of the downtrodden, of dumb animals, of forests, trees, mountains , glaciers, rivers, the earth and the atmosphere? Does the human entity suffer in their suffering? Is human suffering different from the suffering of animals, birds, trees and other living and non-living forms of existence? Is the pain of suffering different from the sense of suffering?

Is a challenge both a resistance and an invitation? Is it an invitation to transcend resistance? Is it a call to test and develop inner strength? How does the suffering of others challenge one? What is compassion and what is caring?

Within the human world isn't the challenge posed by the suffering of others different from the challenge posed by one's own suffering? Is not getting what one desires the cause of suffering? Besides the physical and psychological desires for comforts and relationships, are there other desires challenging the human mind to strive and grow?

Is the evolution of a compassionate human consciousness capable of sensitively suffering the pain of others, necessary for the coming of harmony in the indivisibility of existence? Or, is a political and economic restructuring of society the answer to the challenge of human suffering?

मानव वेदना की चुनौती

सीप की पीड़ा रेत के एक कण को मोती बना देती है। क्या मनुष्य की वेदना मन को गहरे, प्रशस्त, मार्जित और रूपान्तरित कर सकती है; उसे एक संकीर्ण, संकुचित, निज केन्द्रित चेतना से एक संवेदनशील, सेवानिष्ठ, समग्रदर्शी, ब्रह्माण्डीय चेतना में बदल सकती हैं?

अपने शरीर और मन के कष्ट से व्यक्ति कैसे जूझता है? लेकिन क्या निजकष्ट से अलग सजीव एवं निर्जीव अस्तित्व मात्र के कष्ट चारों ओर उपस्थित नहीं है – दूसरों की पीड़ा अभागे और अपमानितों की पीड़ा, मूक जीवों की पीड़ा जंगल, पेड़–पौधों, पहाड़, हिमशिखर एवं जल स्रोतों की पीड़ा, पृथ्वी तथा वायु मण्डल पीड़ा ? क्या मानव उनकी–वेदना में वेदना महसूस करता हैं? क्या मानव की पीड़ा, जीव–जन्तु, वनस्पति और अन्य जीवित एवं निर्जीव अस्तित्वों की पीड़ा से भिन्न प्रकार की है? क्या दुःख और दुःखबोध अलग है?

क्या चुनौती में अवरोध और आमन्त्रण दोनों निहित हैं – अवरोध को अतिक्रम करने का आमन्त्रण? क्या वेदना अपनी आन्तरिक–शक्ति को बलिष्ठ बनाने का आह्वान हैं ? दूसरों का कष्ट किस रूप में चुनौती बन कर सामने आता है? करूणा क्या है? सेवा और जतन क्या है?

मनवीय जगत में, क्या दूसरों की पीड़ा की चुनौती, अपनी पीड़ा से जन्मी चुनौती से पृथक है? क्या वांछित से वंचित होना ही कष्ट का कारण है? शारीरिक सुखों की आकाक्षां और सम्बन्ध के लिए मानसिक चाह के अलावा क्या और भी इच्छाएं है जो मानव को सदा विराट की ओर बढने में प्रयत्नशील रखती हैं?

क्या अस्तित्व की अखण्डता में समरसता का आर्विभाव होने के लिए, एक करूणाशील मानवीय चेतन का विकास आवश्यक है, जो सहृदय होकर दूसरों के दुःख को अनुभूति के साथ समझ सके या कि, राजनैतिक और अर्थनैतिक बदलाव ही मनुष्य के दुःख की चुनौती का उत्तर है?